



पुरुषार्थमूर्ति पूज्य श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा
साधर्मियों को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र

(३१)

कलकत्ता

८-११-१९६२

ॐ

श्री गुरुदेवाय नमः

आत्मार्थी... शुद्धात्म सत्कार।

आपका दीपावली कार्ड, तत्पश्चात् पत्र मिला। समझमें नहीं आता कि क्या लिखूँ? उत्कृष्ट पुण्ययोगसे, ज्ञान-आनंदकी खान अपूर्व सत्पुरुष श्री गुरुदेव निमित्तरूपे आपके समीप हैं; जिनकी निरंतर ध्वनिका संकेत उनकी ओरसे लक्ष्य हटाकर, स्वकी अंतरंग खानका लक्ष्य कराता है। जहाँसे यथार्थ न्याय सुख आदि उघड़ते रहते हैं। अतः स्वअस्तित्वमयी त्रिकाली आत्मामें पसर कर सुखास्वादन करो! जिस स्वादके वसीभूत देवादिक प्रत्ये भी उदासीनता होने लगती है। इनमें अर्थात् परमें एकांत रस व जागृति होना स्वभावके अरसपनेका सूचक है। वर्तमानसे ही 'मैं' परिपूर्ण सुखका सागर हूँ। वर्तमानमें ही देवादिकसे अथवा इन आश्रित रागसे किंचित् लाभ नहीं, लाभ मानना ही स्वका अलाभ है। यह न्याय, तीरकी तौर बाह्य वृत्ति लक्ष्य-प्रति असर करे तो वर्तमानमें ही स्वभावोन्मुख प्रयत्न होवे।...

- शुद्धात्मस्नेही निहालचंद्र

❁

(३२)

कलकत्ता

१५-११-१९६२

ॐ

श्री... सादर जयजिनेन्द्र।

आपका ता.१२-११-६२ का पत्र मिला। अन्य लोगोंके चरित्रनिर्माण सम्बन्धी आपका दृष्टिकोण खयालमें रखते हुए नीचे स्पष्टीकरण लिखा है :

१. प्रथम तो मैं क्या हूँ व क्या कर सकता हूँ, इसका यथार्थ खुलासा होनेपर कार्यकी यथार्थ सीमा बँध सकेगी। मैं आत्मा हूँ व परिणामका करना और उस ही परिणामको भोगना यह ही मात्र आत्माकी क्रिया है; इसके विपरीत स्वयंके जड़ शरीर आदिका व अन्य आत्माका परिणाम मैं आत्मा नहीं कर सकता, कारण जड़के परिणामका कर्ता जड़ द्रव्य है व अन्य आत्माके परिणामका कर्ता वह आत्मा द्रव्य है। ("उत्पाद्व्ययध्रौव्ययुक्तं सत्")।

२. उक्त प्रकारका यथार्थ निर्णय हुए बाद परपरिणामके किंचित् भी कर्तापनेका अभिप्राय टूट जाता

(अनुसंधान पृष्ठ सं.१५ पर...)

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४६: अंक-२५५, वर्ष-२३, फरवरी-२०१९

आषाढ शुक्ल १२, बुधवार, दि. २९-६-१९६६, योगसार पर
पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन, गाथा-६०-६१, प्रवचन-२१

६०... 'अपने भीतर ही मोक्षमार्ग है।' यह मोक्षमार्ग आत्मा में है।

णासगिं अब्भितरहं जे जीवहि असरीरु।
बाहुडि जम्मि ण संभवहिं विवहिं ण जणणी-
खीरू॥६०॥

'जो ज्ञानी नासिका पर दृष्टि रखकर...' (नासिका पर अर्थात्) अन्तर्मुख दृष्टि रखकर... नासिका को एक बाहर का निमित्त लिया है। समझ में आया? 'णासगिं' अर्थात् अन्तर उग्ररूप से ध्यान रखकर... 'दृष्टि रखकर अन्दर शरीररहित...' भगवान आत्मा आकाश के समान वहाँ गिना, तथापि चेतन कहा, उसे अब यहाँ ध्यान (करने का) कहते हैं। ऐसा चैतन्यमूर्ति आत्मा, उसमें अभ्यन्तर मुख्य ज्ञानानन्द को अग्र बनाकर अन्तरध्यान करे तो उसका मोक्षमार्ग अन्तर में ही है। समझ में आया? धर्मी जीव नासिका पर दृष्टि अर्थात् अन्तर (स्वरूप) पर दृष्टि रखकर... मुख्य वस्तु जो है, उस पर दृष्टि रखकर 'अन्दर शरीररहित...' अर्थात् अन्दर में शरीररहित ऐसे आत्मा को शुद्ध कुन्दन समान बनाता है। लो, स्वर्ण समान बनाता है।

'जो मोक्ष प्राप्ति के अनुकूल शरीर आदि सामग्री...' यह कुछ नहीं। 'तो वह साधक उसी भव में और नहीं तो...' जब तक ऐसे निमित्त नहीं, वहाँ तक ऐसा पुरुषार्थ भी नहीं, ऐसा लेना। कहो, समझ में आया? आत्मा को देखता है, लो! शरीररहित शुद्ध

आत्मा को देखता है। 'फिर बारम्बार जन्म धारण नहीं करता।' भगवान आत्मा ज्ञानमूर्ति होने से अपनी ज्ञान की पूर्ण निर्मलता प्रगट करने के लिए अभ्यन्तर मोक्ष का साधन करता है। अन्तर ध्यान करके... 'फिर कभी माता का दूध नहीं पीता।' 'न पीवे जननी दूध...' दूसरी माता के गर्भ से अवतरित नहीं होंगे। समझ में आया? अपने आनन्द और ज्ञानस्वरूप का ध्यान... देखो! इसमें विकल्प, राग, निमित्त और व्यवहार की बात कहीं नहीं रही।

मुमुक्षु :- कहाँ गयी?

उत्तर :- उसके घर, उसमें। (निज) घर में नहीं- ऐसा कहते हैं।

भगवान आत्मा चैतन्यबिम्ब ज्ञायकस्वरूप का अग्र ध्यान, उसे मुख्य लक्ष्य में लेकर अन्तरध्यान करे तो मोक्ष का मार्ग अभ्यन्तर अपने पास है। समझ में आया? अन्दर मोक्षमार्ग है अर्थात् विकल्प में नहीं, निमित्त में नहीं, उस संहनन, मनुष्य देहादिक में मोक्षमार्ग नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु :- नासिका पर अग्र दृष्टि रखे...

उत्तर :- यह नासिका अर्थात् ऐसे रखे अर्थात् अन्दर जाये ऐसा। दूसरा क्या? असका अर्थ कि तब ऐसा होता है। यह आँख फिराकर ऐसे जाये तो अन्दर जाये, ऐसा कहते हैं। नासिका पर (अर्थात्) ऐसे बाहर रखनी है? समझ में आया या नहीं? नासिका का अर्थ

कि ऐसे जो आँख फिरती है, उसे अन्दर में लाना-ऐसा इसका अर्थ है। (दृष्टि को) अन्दर में लाना-ऐसा कहते हैं। नासिका की बातें व्यवहार की है। नासिका पर कहाँ आँख लानी है? वह तो ऐसे अन्दर लाने से अन्दर जाये, वस्तु के स्वभाव पर दृष्टि जाये, उसे यहाँ नासाग्र दृष्टि कहा जाता है-ऐसा कहते हैं। लो, समझ में आया?

आत्मा का नाक पूर्णानन्द का नाथ प्रभु यह उसका-आत्मा का नाक है। यह नाक (जड़ नाक) आत्मा का है? यह पूर्णानन्द उसका नाक है, उसके कारण निभ रहा है। ऐसे पूर्णानन्द के नाक पर नज़र करे, उसे मोक्ष का मार्ग अभ्यन्तर में प्रगट होता है। मूल तो ऐसा है, समझ में आया? बाहर के नाक का यहाँ क्या काम है? वह तो निमित्त से बात की है। अन्दर में मुख्य वस्तु (निज स्वरूप है)। लोक नाक के लिए मरते हैं न? देखो न! बड़ी इज्जत वह नाक... आत्मा की बड़ी इज्जत अनन्त केवलज्ञान का स्वामी वह उसका नाक है।



भगवान आत्माकी प्रतिष्ठा कितनी? आहाहा..! जो केवलज्ञानी की वाणी में न आवे-ऐसा उसका सर्वज्ञपन है। केवलज्ञान की वाणी में न आवे ऐसा अनन्त आनन्द है, केवलज्ञानी की वाणी में न आवे इतना तो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त बल है, बल। आहाहा..! वह अन्तर्बल पड़ा है, वह इसका नाक है, वह इसकी इज्जत है। समझ में आया?

मुमुक्षु :- अमुक भाई का क्या नाक?

उत्तर :- उसमें क्या भला? वह मरकर फिर नरक जाये, लो! अमुक भाई की क्या बात? वहाँ नरक में धक्का खाये, वहाँ भी ऐसा कहलायेगा इसका? आहाहा..! राजा, महाराजा, ऐसे पलंग पर सोते हों, आहाहा..! वे मरकर नरक गये। वे अभी चीख पुकार करते हैं। अरे..

जिसे लम्बी दृष्टि नहीं, उसे देखने का द्रव्य का पर्यायकाल कैसा होगा? समझ में आया? आहाहा..! ऐसे चक्रवर्ती महाराज..! खम्मा अन्नदाता! सोलह-सोलह हजार देव सेवा (करें)। छियानवें हजार पद्मिनी जैसी (रानियाँ) सेवा करें, वह ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती मरकर सातवें नरक के पाताल में गया। क्या खम्मा... खम्मा..! क्या बापू! उसकी क्या बात!! यहाँ ऐसा था, वहाँ क्या था? बापू! उसके जैसे दुःख किसे हैं? वहाँ ऐसा है।

आत्मा जैसी चीज किसकी, बापू! उसकी क्या बात करना! आहाहा..! जिसके आत्मा में... समझ में आया?

भगवान आत्मा वाणी को गम्य नहीं, विकल्प को गम्य नहीं, मन, वाणी, देहादि पर से वह गम्य नहीं। समझ में आया? उसकी इज्जत क्या कहना! उसकी इज्जत की क्या बात करना! ऐसा जो भगवान आत्मा अपने अभ्यन्तर में अपना स्व ध्यान करे तो अल्प काल में निर्वाण और केवलज्ञान को प्राप्त करे-ऐसा उसे अभ्यन्तर मोक्षमार्ग रहा है-ऐसा कहते

हैं। वह बाहर ढूँढ़ने जाना पड़े-ऐसा नहीं है।

मुमुक्षु :- दुःखी होना रुचता है।

उत्तर :- रुचता है; भान नहीं है इसलिए क्या करे? विष्टा का कीड़ा विष्टा में पड़े। समझ में आया? कीड़े को विष्टा में से बाहर निकाले तो विष्टा में जाये-ऐसा है न उसे? चीज का पता नहीं। कसाई के बकरे को बाहर निकालो तो बकरा वापस वहाँ घर में जाता है। अनादि की टेव पड़ी है न?

भगवान आत्मा.. बापू! तेरी कीर्ति तूने सुनी नहीं, तेरी कीर्ति की व्याख्या वीरताग की वाणी में पूरी नहीं आती। सर्वज्ञ परमेश्वर जो सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान की सम्पत्तिवाले कहलाते हैं और अनन्त बल वाले कहलाते हैं, उनकी वाणी में भी तेरी (बात पूरी नहीं आती)।

उनके ज्ञान में बात आ गयी। उनके ज्ञान में जानते हैं कि ओहोहो..! वाणी में, जाना उससे अनन्तर्वे भाग, अनन्तवे भाग वाणी में आता है। ऐसे आत्मा की क्या प्रतिष्ठा! ऐसे आत्मा का अन्दर ध्यान करना-ऐसा कहते हैं। वह फिर बारम्बार जन्म धारण नहीं करता। वस्तु में जन्म नहीं, उस वस्तु का ध्यान करने से उसे जन्म नहीं मिलेगा, फिर से माता का दूध नहीं पियेगा।

‘आत्मा, शरीररहित अमूर्तिक है। आत्मा इन्द्रियों द्वारा ज्ञात नहीं होता मन भी केवल विचार कर सकता है...’ मन विचार कर सकता है। **‘ग्रहण नहीं कर सकता। आत्मा का ग्रहण आत्मा द्वारा ही होता है।’** पहले शुरुआत... आत्मा का ग्रहण आत्मा द्वारा ही होता है। **‘उसकी ग्रहण का बाह्य साधन ध्यान का अभ्यास है।’** लो, ठीक! बहुत तो ध्यान का अभ्यास बाह्य साधन होगा। एकाग्र होने का अभ्यास। बाह्य साधन का अर्थ-पर्याय को जरा एकाग्र करते हैं न। कहो, समझ में आया? आहाहा..!

‘वीतरागभाव की शान्तरस से भरी हुई गंगा नदी बहने लगी...’ अन्दर में... **‘केवल एक अपने ही शुद्ध अशरीरी आत्मा को शरीर प्रमाण विराजित अन्तर में सूक्ष्म भेदविज्ञान की दृष्टि से देखने का उद्यम करना।’** शान्त... शान्त... विकल्परहित, रागरहित, निर्विकल्पतत्त्व को देखने को निर्मल गंगा बहावे... निर्मल परिणति को प्रगट करे। **‘केवल एक अपने ही शुद्ध अशरीरी आत्मा को...’** एक शरीररहित आत्मा को, **‘शरीर प्रमाण विराजित...’** शरीर प्रमाण रहा हुआ (अर्थात्) इतने क्षेत्र में हा हुआ-ऐसा कहते हैं। बड़ा महान है, इसलिए बड़े क्षेत्र में रहा है-ऐसा नहीं। बड़ा है भाव से; क्षेत्र से बड़ा, इसलिए बड़ा है-ऐसा नहीं है। ऐसा अन्तर सूक्ष्म भेदविज्ञान की दृष्टि, राग से रहित भिन्न देखने का उद्यम करता है।

अन्तर्मुख में जाने का बारम्बार उपाय करे। राग से, संयोग से, निमित्त से, आँखें मूँद करके... विकल्प से आँखें मूँद कर... समझ में आया? यह (जड़) आँखें मूँदने से क्या हुआ? यह तो वैसे भी मुँदित है, मर जाए तब ऐसे मुँद जाती है। समझ में आया? यह तो

विकल्प की वृत्तियों को मूँद कर अन्दर निर्विकल्प भगवान आत्मा में टकटकी लगाकर उसमें एकाग्र होना, यह अभ्यन्तर मोक्ष का उपाय है। कहो, समझ में आया? यह अभ्यन्तर मोक्ष का उपाय है, बाहर है नहीं। प्रवचनसार में कहा है न? बाह्य सामग्री किसलिए ढूँढ़ने जाता है? तेरा सब साधन अन्दर में पड़ा है (प्रवचनसार गाथा १६)। आहाहा..! परन्तु मनुष्य को कुछ... कुछ... कुछ... सहारा, व्यवहार यह हो, यह हो, यह हो... और जहाँ व्यवहार की बात आवे, वहाँ सहायरूप है, व्यवहार आलम्बनरूप है, इसलिए भगवानने बहुत कहा है। देखो, कहा है या नहीं? कहा क्या है? परन्तु उसका फल क्या कहा? वहीं का वहीं रहे तो उसका फल संसार है। समझ में आया?

‘एकाकी अपने आत्मा के गुणों का चिन्तन करना, उसे ही आत्मा की भावना कहते हैं। भावना करते-करते जब एकाएक मन स्थिर होगा, यही आत्मिक अनुभूति ध्यानाग्नि है।’ लो, आत्मा का अनुभव ध्यान की अग्नि है, ज्वाला है, वह कर्म ईंधन को जलाती है। **‘आत्मा को स्वर्ण समान शुद्ध बनायेगी।’** सोना होता है न? उसमें ताँबे की लालिमा होती है या नहीं? फूँक-फूँककर अग्नि से उजला करते हैं न? वैसे भगवान आत्मा में रागादि मैल (है)। उसे स्वरूप के ध्यान की फूँक मारते-मारते आत्मा को कुन्दन समान शुद्ध करे। अन्तरध्यान करे, वह उसकी अन्तरक्रिया है। आहाहा..! समझ में आया? व्यवहारमोक्षमार्ग, वह मोक्षमार्ग नहीं है-ऐसा कहते हैं। निश्चयस्वरूप में एकाग्र होना, वही इसका मोक्ष का मार्ग है, वह अभ्यन्तर स्वयं के पास है, जरा भी दूर नहीं है। विकल्प से तो दूर है, आत्मा से बाहर है; विकल्प तो आत्मा से बाहर है, वह कहीं अन्दर में नहीं है, फिर वह साधन-फाधन (कहाँ से आया)?

मुमुक्षु :- गुरु दिखावे न?

उत्तर :- दिखावें गुरु, आत्मा स्वयं गुरु अर्थात् बड़ा बैठा है (वह) इसे दिखाता है। यह तो आ गया नहीं? समाधिशतक में आ गया। पूज्यपादस्वामी के इष्टोपदेश में आ गया है। परमात्मप्रकाश में आ गया है,

बहुत जगह आया है। जो जिसे समझावे, वह उसका गुरु। हे आत्मा! तू आनन्द है, तू ज्ञान है, तू पूर्ण है, तू शुद्ध है, तू अनादि से भटका है-ऐसा जो समझाकर अन्दर स्थिर हो, वह क्रिया करे, वह उसका गुरु।

मुमुक्षु :- अभेद हुआ, उसमें गुरु सिद्ध किस प्रकार हुए?

उत्तर :- कहते हैं, वह तो अभेद हो गया। उसमें गुरु सिद्ध कहाँ हुआ? एक हो गया, वह एक हुआ उसमें गुरु रहा। आत्मा गुरु, उसकी पर्याय-प्रजा उसका शिष्य... बहुत वर्ष पहले, 'उत्तराध्ययन' का पहला अध्ययन है न? उसमें से कहते थे। पहले उसमें से निकालते थे। उत्तराध्ययन का पहला अध्ययन 'विनय अध्ययन' है। शिष्य है, वह विनय करता है। पर्याय, आत्मा की विनय करती है। आत्मा गुरु है, शिष्य विनय करता है। भगवान का मार्ग विनयमार्ग है, कहा। ए...ई...! आता है न? उत्तराध्ययन का पहला (अध्ययन) 'संयोगावित्तमुक्त' आता है। उत्तराध्ययन का पहला (अध्ययन) शिष्य विनय करे, विनय। आत्मा की पर्याय अन्दर द्रव्य को बहुमान देती है, उस पर नजर करती है, वह आत्मा गुरु और पर्याय शिष्य है। लो, दो हो गये। ऐसे तो नामभेद से भेद है, लक्षणभेद से भेद है, भावभेद से भेद है, प्रदेशभेद से अभेद है।

भगवान आत्मा... दो धर्म गिने हैं न? एक पर्याय धर्म और एक द्रव्यधर्म, दो धर्म गिने हैं। द्रव्यधर्म कायमी-असली तत्त्व है; पर्यायधर्म क्षणिक है क्योंकि जितना कार्य होता है, वह पर्याय से होता है, पर्याय से होता है, गुण-द्रव्य से नहीं होता परन्तु जिसका आश्रय लेते हैं, वह पर्याय नहीं; आश्रय लेते हैं, उस द्रव्य का। आधार उसका, इसलिए वह गुरु हुआ।

मुमुक्षु :- गुरु के आधार बिना पर्याय होती है?

उत्तर :- नहीं होती, गुरु के आधार बिना पर्याय कहाँ से होगी? आत्मा के आधार बिना नहीं होती, ऐसा। कहो, समझ में आया इसमें?

'समाधिशतक में कहा है-मनुष्यों के साथ बात करने से मन की चंचलता होती है...' यह तो एकाग्रता कैसे करना? उसका स्पष्टीकरण करते हैं।

'फिर मन में भ्रमभाव होता है...' इसे क्या कहा? इसे ऐसा कहा (ऐसा) वहाँ रुकना पड़ता है। 'योगियों को मनुष्यों का संग छोड़ना चाहिए...' भगवान आत्मा को साधनेवाले एकान्त में जैसे बने वैसे अपने स्वरूप को साधें, दूसरे फिर कोई पूछे, फिर उसका जवाब ऐसा होता है या ऐसा नहीं होता, हाँ... ना... (करने में) रुकना पड़े और अपनी एकाग्रता में व्यवधान पहुँचे... दूसरा समझे नहीं तो उसके घर रहा। यह व्यवहार, निश्चय का झगड़ा; निमित्त-उपादान का झगड़ा और क्रमबद्ध का झगड़ा-पाँच बोल का झगड़ा है। पाँच समझे तो वह परमेश्वर को समझे। लो, आहाहा..! झगड़ा खड़ा किया, उसमें रुकना पड़े, शरीर के लिए रुकना पड़े... कहो, समझ में आया? कहते हैं कि यह सब परसंग के लिए... यह परसंग है न? उसे खिलाना और पिलाना, दवा और चौपड़ना और... कहो, समझ में आया? यह विकल्प का परसंग है।

मुमुक्षु :- एकान्त में जाये तो विकल्प टूट जाये।

उत्तर :- एकान्त में जाये तब तो अन्दर में (विकल्प) टूट जाये। एकान्त अर्थात् आत्मा... दूसरा एकान्त कौन-सा था? जंगल में क्या है? जंगल में बहुत कौवे काँव... काँव... किया करते हैं। जंगल यहाँ अन्दर है, जंगल यहाँ पड़ा है, भगवान आत्मा शून्य है, राग से शून्य है, अन्तर गुफा में ध्यान कर, ऐसा शास्त्र में आता है। आता है न ४९ गाथा में? जयसेनाचार्यदेव में (आता है)। वह यहाँ यह कहते हैं। समझ में आया? लो।

अब, ६१। 'निर्मोही होकर अपने अमूर्तिक आत्मा को देखे।' यहाँ तो सार में सार, बदल-बदलकर दूसरी बात लेते हैं।

असरीरू वि सुसरीरू मुणि इहु सरीरू जडु जाणि।
मिच्छा-मोहु परिच्चयहि मुत्ति णियं वि ण
माणि॥६१॥

'अपने शरीररहित आत्मा को ही उत्तम ज्ञानशरीरी समझो।' देखा, अपने 'असरीरू' आत्मा शरीररहित 'सुसरीरू' परन्तु ज्ञानशरीररहित... 'सुसरीरू' है न? उत्तम ज्ञानशरीर, ऐसा।

मुमुक्षु :- सुशरीर।

उत्तर :- हाँ, सुशरीर है। वह शरीररहित परन्तु सुशरीरसहित (है)। सुशरीर अर्थात् उत्तम ज्ञान। चैतन्य परमभाव, चैतन्य का-आत्मा का परमभाव, वह उसका शरीर है।

‘इहु सरीरु जडु जाणि’ इस शरीर को जड़ जान। समझ में आया? **‘पुद्गल रचित शरीर को जड़ और ज्ञानरहित जानो। मिथ्या मोह का त्याग करो।’** एक बात-जड़ (के ऊपर से) दृष्टि हटाकर और पर तरफ का मिथ्या मोह-भ्रम... कुछ पर में ठीक होवे तो (मुझे) ठीक पड़े। ऐसा होवे तो ऐसा पड़े, प्रतिकूलता टले तो ठीक पड़े, अनुकूल एकान्त जगह (होवे) संसार छोड़कर बाहर हों तो ठीक पड़े-यह सब मोह है। कहते हैं, समझ में आया? जहाँ बैठा वहाँ जंगल है, तुझे पता नहीं। **‘मिथ्या मोह का त्याग करना मूर्तिक ऐसे शरीर को भी अपना मत मानो...’** ऐसा। समझ में आया? यह शरीर मूर्तिक है न? भगवान अमूर्तिक है, यह (शरीर) जड़ है, यह (आत्मा) चेतन है।

‘आत्मध्यान के साधक के लिए उचित है कि वह अपने को केवल जड़ शरीर रहित एक ज्ञानशरीरी शुद्ध आत्मा समझे।’ कहो, उसे **‘पुद्गल परमाणुओं से रचित शरीर को एक पिंजरा अथवा कारागृह समझे।’** यह शरीर तोते को रखने का पिंजरा है। समझ में आया? यह कारागृह है। तोता भले चाहे जैसा चतुर, होशियार (होवे) परन्तु कारागृह में पड़ा हो तो उड़ नहीं सकता। स्वयं पड़ा है, हाँ! कारागृह उसे नहीं रखता। कारागृह समान है। उसकी पर्याय में स्वयं की योग्यता रोकने की है न? उसे कारागृह समान जान। कहो, समझ में आया? **‘अपना सर्वस्व श्रेय अपने ही आत्मा में जोड़े...’** अपना सब श्रेय आत्मा में जोड़ दे। जितनी हित की क्रिया करनी हो, उसे अपने आत्मा में जोड़ने की है। **‘सर्व पर तरफ से प्रेम दूर करो।’** लो, पर से प्रेम छोड़ दे-इत्यादि बहुत बात की है।

‘जब तक सम्यक्त्व नहीं होता, तब तक इस देह का और देह के सुख का अभिनन्दन करता है।’ जब तक आत्मा के शुद्ध चैतन्य की प्रतीति,

आनन्दस्वरूप हूँ, आत्मा आनन्द और अतीन्द्रिय सुख से भरा हूँ-ऐसी श्रद्धा और ज्ञान जब तक नहीं होता, तब तक देह और देह के सुख का अभिनन्दन करता है। देह ठीक होवे तो ठीक और देह को अनुकूल होवे तो ठीक, इसकी यह बुद्धि नहीं जाती है। क्या कहा, समझ में आया?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द है-ऐसी सम्यग्दृष्टि न हो, तब तक शरीर और शरीर के साधन को अभिनन्दन-सहारा देता है। ऐसा होवे तो ठीक। यह होवे तो ठीक और यह होवे तो ठीक परन्तु मैं होऊँ तो ठीक-ऐसा नहीं मानता। सम्यग्दृष्टि अपने आत्मा के स्वभाव में आनन्द मानता है, देखता है, अनुभव करता है; इसलिए शरीर और शरीर के साधन में कहीं उसका पोषण (या) अभिनन्दन नहीं है। अभिनन्दन कहा है न? शरीर निरोग रहे तो ठीक, यह देह का अभिनन्दन है। यह अभिनन्दन सम्यक्त्वी को नहीं होता, मिथ्यादृष्टि अभिनन्दन देता है। हाश.. छह महिने से रोगी थे, अब मिटे... हाश... यह थे परन्तु रोग तो तेरा भ्रम था, वह मिटा, अब तुझे इसका क्या काम है? है? ऐसा कहते हैं, हाँ!

देह और देह के सुख का अभिनन्दन, ऐसा। अच्छा आहार-पानी, अच्छा पानी, अच्छा सोने का, अच्छा बैठने का, अच्छा पलंग, बिछाने के अच्छे गलीचे यह होवे तो ठीक... ठीक... यह अभिनन्दन आत्मा में आनन्द है-ऐसा भान और प्रतीति नहीं होत तब तक इसे यह ठीक, ऐसा इसे हटता नहीं है। समझ में आया? स्वयं तो भगवान आत्मा है, जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द पूरा पड़ा है, उसकी जहाँ दृष्टि हुई, (वहाँ) अब यह ठीक रहा कहाँ? अज्ञानी तो हाश (करता है) श्वास लेने का अब समय मिला। हवा-पानी मिले कुछ, हाश... गर्मी... गर्मी... गर्मी थी... बाहर का साधन, सर्दी, बहुत सर्दी, बहुत सर्दी... आहाहा..! तीन दिन से तो सर्दी... सर्दी... सर्दी... सर्दी... सर्दी... शरीर के बाहर के सुख में ठीक, ठीक... यह सर्दी हुई तो ठीक हुआ... अब सर्दी कम हो गयी, यह ठीक का-पर में सुख का अर्थात् अनुकूलता में ठीक का अभिनन्दन मिथ्यादृष्टि को होता है। समझ

में आया?

मुमुक्षु :- बोलने से पहले बहुत विचार करना पड़े ऐसा है।

उत्तर :- बोलते पहले हो? भाव में (जागृति रहनी चाहिए) बोलने का क्या? बोले कौन?

परन्तु यह तो भाषा हुई, भाषा में क्या है? भाव में इसे यह ठीक (हुआ), तो यह (आत्मा) ठीक नहीं रहा। आत्मा आनन्दमूर्ति है-ऐसी दृष्टि हुई उसे बाहर में यह देह और देह के साधन में ठीक, अनुकूल होवे तो ठीक... अनुकूलता का अर्थ क्या? वे तो ज्ञेय हैं। समझ में आया? भूख लगी थी और अच्छा खाया, हाँ! ठीक खिलाया। ऐसा भाव अन्दर की बात है। बाहर की कहाँ (बात है)? यह बात तो अज्ञानी भी बोले, ऐसा है-वैसा है... भाव में वह घोलन हुआ है। यह (आत्मा) इस ओर है-ऐसा पता नहीं। अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द परमात्मा हूँ-ऐसी दृष्टि हुई, उसे देह और देह के सुख-साधन में अभिनन्दन नहीं रहता है। मुबारक रहना ऐसा, ऐसा नहीं कहते? यह पास होवे तब अभिनन्दन देते हैं न? हैं? अभिनन्दन देते हैं न? क्या कहलाता है। भाई! यह पढ़े तब क्या कहलाता है, पास होवे तब? मुबारकबाद। ऐसे अज्ञानी, शरीर और शरीर के सुख को मुबारकबाद देता है।

धर्मी (जिसे) आत्मा आनन्दमूर्ति है-ऐसी प्रतीति और भान हुआ है, वह बाहर के शरीर और शरीर के साधनों में मुबारकपना नहीं मानता। आहाहा..! एक ओर राम एक ओर गाँव। भगवान राम की-आत्मा की जहाँ दृष्टि हुई, वह तो सच्चिदानन्द प्रभु सिद्ध समान में हूँ, मैं तो ज्ञान और आनन्द का कन्द हूँ। मेरे आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द की खान है। ऐसी श्रद्धा-सम्यग्दर्शन, स्वभाव सन्मुख होकर हुआ (वह) बाह्य के किसी भी साधन को ठीक है-ऐसा मानने का अभ्यन्तर में नहीं रहा। आहाहा..! समझ में आया?

मिथ्यादृष्टि इन्द्रियों के विषय के भोग का लोलुपी है, ऐसा। समझ में आया? तीव्र लालसा रखता है, ऐसी सब बहुत बात करते हैं। **‘वह मिले तब हर्ष और**

न मिले तब विषाद करता है, वियोग होने पर शोक करता है। जैसे-जैसे मिलता है, वैसे-वैसे अदिक तृष्णा की जलन बढ़ा लेता है।’ जैसे पैसा मिले, स्त्री मिले, पुत्र मिले, अनुकूल मिले, मकान मिले, ठीक मिले, कपड़ा मिले, सोने का-ओढ़ने का, हवा-पानी सब चारों ओर... ऐसा.. ओहो..! वहाँ तो इसे अन्दर हाश (हो जाता है)। अभी अब बादशाही है। मूर्ख की बादशाही-ऐसा कहते हैं और ज्ञानी की बादशाही आत्मा में है-ऐसा कहते हैं। यह आनन्द है, आनन्द है, वही आत्मा है। दूसरा आनन्द कहीं है ही नहीं। उसे बाहर में अभिनन्दन-पोषण देना, यह नहीं रहा। अज्ञानी को अन्तर के आनन्द का पता नहीं है, इसलिए बाहर का पोषण दिये बिना नहीं रहेगा।

‘शरीर से सुखी तो सुखी सब बातें’ लो! आता है या नहीं? भाई! बहुत बोलते हैं हमारे। कैसे हुआ? अब कहाँ तक रहेगा यह? ‘शरीर से सुखी तो सुखी सब बातें’- यह रट रखा है। इसका अर्थ कि ‘शरीर दुःखी तो दुःखी सब बातें’-ऐसा। पैसा हो, पुत्र हो तो भी दुःखी हैं। धूल में भी बाहर में सुख-दुःख नहीं है, व्यर्थ में टेका देता है। रहने योग्य चीज नहीं उसे टेका देता है। समझ में आया? वह रहने योग्य चीज नहीं है, उसे अभिनन्दन देता है कि ठीक हुआ, रहना, रहना, रहना। मूढ़ अनित्य को रहना कहता है। अनित्य को रहना, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। आहाहा..! समझ में आया?

मिथ्यामोह परिचय... शब्द पड़ा है न। उसकी सब व्याख्या है, हाँ! मिथ्यामोह है न, उसकी व्याख्या है, हाँ! भगवान आत्मा का शरीर-ज्ञानशरीर है-ऐसा जहाँ भान हुआ, फिर मिथ्यामोह का त्याग हुआ। मिथ्यामोह का त्याग न हो तो इस प्रकार वह मानता है, आहाहा..! अरे.. एक राग की-शुभ की वृत्ति आवे, उसका भी अभिनन्दन उसे मिथ्यामोह है। आहाहा..! क्योंकि भगवान तो ज्ञानशरीर है, प्रभु तो चैतन्य शरीर है उसके आनन्द और उसके ठीक को न मानकर, ठीक को माने, वह मिथ्यादृष्टि है। इसलिए छोड़, मोह परिचयी। समझ में

आया?

शरीर मूर्त है, रागादि सब मूर्त हैं, उसे अपना नहीं जाने-ऐसा है न? इस शरीर को भी अपना नहीं माने, जितना सब मूर्तस्वरूप है, उसे अपना नहीं जानता। चौथा बोल है न? श्लोक का चौथा बोल है। **‘वर्तमान जीवन की चिन्ता में ही उलझ जाता है, यदि कदाचित् दान, धर्म, जप, तप करता है तो भी उसके फल में वर्तमान में यश, धन, सन्तान और उचित विषय का लाभ चाहता है।’** उस वस्तु को तो पता नहीं इसलिए भावना तो है नहीं। इसलिए मिथ्यादृष्टि दान दे, धर्म अर्थात् कोई पुण्य करे, तप करे-जप करे तो उसके फल में वर्तमान में यश (चाहता है)। दुनिया अच्छा कहती है या नहीं? दुनिया में कुछ मिलेगा या नहीं इसमें? सन्तान मिलेगी या नहीं? लड़का होगा या नहीं? इच्छित विषय का लाभ, चाहे अनुसार वेतन मिलेगा या नहीं? इतनी आमदनी होगी या नहीं? दुकान ठीक से चलेगी या नहीं? सब धर्म के बहाने ऐसी भावना होती है।

‘कदाचित् परलोक का विश्वास हुआ...’ लो न! इसे कहते हैं-ऐसे दानादि करता हो **‘तो देवगति के मनोज्ञ भोगों की तृष्णा रखता है।’** वहाँ अच्छे भोग मिलें, अच्छा देव होऊँ, हल्का नहीं; व्यन्तर और ज्योतिष नहीं, बड़ा देव होऊँ-ऐसी तृष्णा रहती है। समझ में आया? **‘उसके मन-वचन-काया का सब वर्तन सांसारिक आत्मा के मोह पर आधार रखता है।’** वह मिथ्यामोह परिचयी है न? उसकी व्याख्या की है।

‘अन्दर का प्रेम एक आत्मानन्द के प्रति ही रह जाता है। वही सम्यग्दृष्टि जीव निश्चिन्त होकर जब चाहे तब सरलता से आत्मा के अन्दर सर्व शरीरों से भिन्न ज्ञानाकार देख सकता है।’ भगवान आत्मा, उसकी जहाँ सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई,

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई... मिथ्यादर्शन में तो विकार और संयोग की प्राप्ति थी। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में अन्तर्मुख की प्राप्ति हुई; इसलिए उसे निश्चिन्त होकर जब चाहे तब आत्मा का ध्यान कर सकता है। आत्मा को पकड़ा है कि यह आत्मा। शुद्ध चैतन्य अनुभव में आ गया है, जब सन्मुखता करना चाहे, तब सन्मुखता करके आत्मा का अनुभव कर सकता है।

‘उसे अपनापन अपने ही आत्मा में रहता है... चारित्रमोह के उदय से रोगी समान कड़वी दवा पीता हो, वैसे लाचार होकर विषयभोग करता है...’ लाचार होकर कड़वी दवा जैसे पीना पड़े, वैसे समकिति को विषय के विकल्प में जुड़ना पड़ता है। कड़वी दवा पीता हो, महा कड़वी... मुँह ऐसा (कड़वा) हो जाये। समझ में आया? ऐसा मुँह अन्दर में से बदल जाये, कहते हैं। आहाहा..! भोग की वासना जहर जैसी लगती है। समझे न? कड़वी दवा जैसी लगती है। **‘परन्तु भावना उसके त्याग की ही रहती है।’** यह कब छूटे? कब छूटे पुरुषार्थ से? ऐसी भावना रखता है। कहो, समझ में आया?

‘दृष्टि में ग्रहण योग्य एक निज स्वरूप ही रहता है, सम्यग्दर्शन का धारक ही आत्मा का दर्शन अन्दर कर सकता है।’ लो, अज्ञानी बारम्बार राग और पर का दर्शन किया करता है, पर को ही देखता है-ऐसा कहते हैं। मिथ्यादृष्टि राग को, विकार को, शरीर को, उसकी अनुकूलता बाहर में पर्याय की ही देखा करता है। सम्यग्दृष्टि (को) आत्मा की प्रतीति (हुई है), शुद्ध चिदानन्दस्वरूप दृष्टि में, अनुभव में आया-ऐसा ही आत्मा बारम्बार अनुभव में लेता है। ऐसी दृष्टि उसकी होती है। कहो, समझ में आया? इसके बाद एक दृष्टान्त दिया है।

ट्रस्ट के इस स्वानुभूतिप्रकाश के हिन्दी अंक (फरवरी-२०१९) का शुल्क श्री श्यामसुन्दर दीपप्रकाश जैन, अहमदाबादके नाम से साभार प्राप्त हुआ है। जिस कारण से यह अंक सभी पाठकों को भेजा जा रहा है।



पूज्य भाईश्री शशीभाई द्वारा परमागमसार
ग्रंथके ३४४ वचनामृत पर भाववाही
प्रवचन, दि. २९-८-१९८३, प्रवचन
क्रमांक-१६९ (विषय : भेदज्ञान)

ज्ञायक ध्रुव-नित्यानन्द प्रभुको देखनेवाला भूतार्थदर्शी हैं, पर शास्त्रको जाननेवाले अथवा एक समयकी पर्यायको देखनेवाले भूतार्थदर्शी हैं-ऐसा नहीं कहा। पूर्णानंदके नाथ प्रभुको निज-बुद्धिसे अर्थात् स्व-चैतन्य-और ढली हुई ज्ञानदशारूप मतिज्ञान द्वारा, भगवान ज्ञायक स्वरूप है; और राग आकुलता स्वरूप है-ऐसा दोनोंका विवेक-भेद-विज्ञान करके वे अन्तर पुरुषार्थ द्वारा ज्ञायकको आविर्भूत कर आत्माका

ज्ञायक रूपसे अनुभव करते हैं।

३४४

(गतांकसे आगे..)

...उसको मन तो है नहीं। एकेन्द्रिय जीवको मन तो है नहीं। मन तो पाँच इन्द्रिय अने छद्म मन पंचेन्द्रियके बाद होता है। सर्व पंचेन्द्रियको मन नहीं है। अतः उसके नीचे चौ इन्द्रिय, त्रि इन्द्रिय, द्वि इन्द्रिय, एकेन्द्रियको तो मन होनेका सवाल नहीं है। अतः बुद्धिपूर्वकका वहाँ कोई पुरुषार्थ नहीं है। कषायकी अत्यंत मन्दता होती है, अबुद्धिपूर्वक होती है। अतः कषायकी मन्दताका जो यहाँ प्रयत्न करता है, उसे शास्त्रकार ऐसा कहते हैं, ज्ञानियों उसे ऐसा कहते हैं कि भाई! कषायकी मन्दताका पुरुषार्थ तो एकेन्द्रिय निगोदका जीव अबुद्धिपूर्वक करता है, तूने क्या विशेष कार्य किया?

जैसे लोग कहते हैं न? कुटुम्ब-परिवारकी परवरिश तो तिर्यच भी करता है। चिड़िया भी चिड़ियाके बच्चेको खिलाती है, सुवर भी सुवरके बच्चेको खिलाती है और दूध पिलाती है। तूने मनुष्य होकर क्या विशेष किया?

वैसे यहाँ कहते हैं कि कषायकी मन्दता करके

तो निगोदका जीव मनुष्य होता है। तूने मनुष्य होकर कषायकी मन्दता करके तूने शुभभाव किये उसमें नया क्या किया?

मुमुक्षु :- मनुष्यत्वमें कषायकी मन्दता हो तो उसमें क्या विशेषता है?

पूज्य भाईश्री :- वह तो निगोदका जीव करता है, एकेन्द्रिय करता है, उसमें तूने नवीन क्या किया? वह कोई विशेष बात नहीं है। वह बन्धका भाव है। अनादिसे बन्धका भाव तो तू करता आया है। फिर मनुष्यपर्यायका बन्ध कर... बन्ध सामान्य है। एक मोक्षका भाव करे, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गमें प्रवेश करे तब उसने कोई विशिष्ट कार्य किया। तबतक कोई विशेषता नहीं गिननी चाहिये। यह उसका तात्पर्य है।

इसलिये ऐसा कहते हैं कि 'निज-बुद्धिसे...' अपने ज्ञान द्वारा, मतिज्ञान द्वारा भगवान ज्ञायकस्वरूप है, ऐसाराग एवं आकुलतासे भिन्नता करे, चलता हुआ राग है वह आकुलतास्वरूप है, इसप्रकार दोनोंका विवेक करके, एक मलिन है और एक पवित्र है,

ऐसा अंतरंगमें विवेक करके, उससे हटकर, भिन्न पड़कर भेदज्ञान करना। अर्थात् भेद माने भिन्न होकर अंतर पुरुषार्थ द्वारा स्वरूप प्रत्ययी बलसे ज्ञायकको आविर्भूत करके-प्रगट करके, ज्ञायकको प्रगट करके आत्माको ज्ञायकपने अनुभवता है। ऐसा नहीं कहा कि यदि कर्म हटेंगे तो अनुभव करेगा, अन्यथा नहीं। पुरुषार्थ करे तब कर्मको उपशम करता है। वह उपशम होता है तब उपशमित करता है ऐसा कहनेमें आता है।

यदि स्वयं निर्बल हो तो कर्मका ज़ोर है ऐसा कहनेमें आता है। अपना पुरुषार्थ हो तो कर्मको पराजित करता है ऐसा कहनेमें आता है। वह परस्पर कहनेकी बात है। तुझमें अनन्त शक्ति है और उस शक्तिको सँभाल, उस शक्तिको प्रगट कर, उस शक्तिका उपयोग कर तो तेरी सिद्धिमें तुझे कोई रोक सके ऐसा नहीं है। यह सीधी बात है। एक परमाणुकी पर्यायको कोई बदल नहीं सकता। क्योंकि उसमें अनन्त शक्ति है। उसी तरह तेरी पर्यायको कोई बदल नहीं सकता। क्योंकि तेरेमें अनन्त शक्ति है। जिसमें शक्ति है उसको दूसरा क्या करे?

पुनः कोई पदार्थमें अन्य कोई पदार्थका कार्य करनेकी शक्ति ही नहीं है तीनों काल। अतः वह भय रखना व्यर्थ है कि किसीके कारण कुछ कार्य होता है। वह तो सवाल ही नहीं रहता। परन्तु राग और विकल्पके कारण, रागके कारण कार्य होता है वह बात भी नहीं रहती है। पूर्वपर्यायके कारण दूसरी पर्यायका कार्य होता है वह बात भी नहीं रहती है। अतः उसे स्वयंके वर्तमान पुरुषार्थको ही जागृत करना शेष रहता है। इतनी स्पष्ट बात इसमें-से निकलती है। उसे निरालम्ब पुरुषार्थ कहनेमें आता है।

निरालम्ब पुरुषार्थ माने? किसीका अवलम्बन न ले। पूर्वपर्यायका न ले, रागका न ले, निमित्तका न ले उसे निरालम्ब पुरुषार्थ कहते हैं। कल चर्चामें वह बात चली न। निरालम्बकी बात आती थी, बहिनश्रीके साथ। निरालम्ब... यहाँ वह शब्दप्रयोग किया है। ३०४ वचनामृत है।

‘इस वस्तुके लिये प्रयोग करने हेतु

अन्तरमें-मूलसे पुरुषार्थका उफान आना चाहिये कि ‘मैं ऐसा महान पदार्थ!!-ऐसे निरालम्बनरूपसे, अन्यके आधार बिना...’ उसे यहाँ निरालम्बन कहते हैं। **‘अन्यके आधार बिना...’** ऐसे। बस, उसी कालका पुरुषार्थ काम करता है। आधार बिना काम करता है ऐसे ले लिया, देखा? पहले इतना कार्य किया था इसलिये हुआ, विकल्प किया था आत्माका इसलिये पुरुषार्थ हुआ, वह कोई बात ही नहीं है। आधार बिना चलता है। उसी कालमें स्वतन्त्र कार्य उत्पन्न होता है। उसे आगे-पीछे कुछ देखना नहीं है। निमित्तकी दृष्टि भी नहीं, रागकी दृष्टि नहीं, पूर्वपर्यायकी दृष्टि नहीं। सीधी, ज्ञायक अनन्त शक्तिके पिण्ड पर जिसकी दृष्टि है, उसे पुरुषार्थ फटकर बाहर आता है। जैसे पाताल फटकर प्रवाह बाहर आये उसे कोई रोक नहीं सकता। निर्विकल्प होने पूर्व ऐसी दशा होती है। यह विषय है।

मुमुक्षु :- ..

पूज्य भाईश्री :- निरालम्ब पुरुषार्थ है और उस निरालम्ब पुरुषार्थमें इतनी हद तक तीव्रता, उग्रता होती है कि वीतरागी स्वरूपके आविर्भावमें, ऐसा एक भाव भवान्वित होता है कि बुद्धिपूर्वकके रागकी उत्पत्ति ही न हो, तब उसे निर्विकल्प कहते हैं। विकल्प है वह बुद्धिपूर्वकका राग है। तब उसे निर्विकल्प दशा कहनेमें आती है। पुरुषार्थ तो सम्यक् सन्मुख हुआ तबसे चलता है। भेदज्ञान है, भेदज्ञानका प्रयोगरूप अभ्यास है। उस अभ्यासमें पुरुषार्थ है, परन्तु वह पुरुषार्थ मन्द है तबतक विकल्प मिटता नहीं। वही पुरुषार्थ तीव्र होता है, जिस समय तीव्र होता है उस समय विकल्पकी बुद्धिपूर्वकके रागकी उत्पत्ति नहीं होती। जबतक उत्पत्ति होती थी तबतक उसका अनुभव होता था। जब उत्पन्न ही नहीं हुआ तो उसका अनुभव होनेका प्रश्न नहीं रहता। तब अनुभव रहता है। परन्तु विकल्प नहीं हैं इसलिये विकल्पका अनुभव नहीं होनेसे उसे निर्विकल्प अनुभव कहनेमें आता है। अनुभव तो सर्वकालमें है। विकल्पके कालमें विकल्पका, विकल्पके अभावके कालमें निर्विकल्पका। निर्विकल्प स्वरूप है

तब। उतना ही नहीं निर्विकल्प स्वरूपका आविर्भाव है। वह आविर्भाव निर्विकल्पभावको प्राप्त करता है तब विकल्पका सद्भाव नहीं रहता, उसे निर्विकल्प अनुभव कहनेमें आता है।

मुमुक्षु :- एकबार निर्विकल्प होनेके बाद पुनः विकल्पमें आनेकी प्रेरणा कौन करता है?

पूज्य भाईश्री :- कोई नहीं। इसीलिये कहा कि उसे निर्विकल्पको कारण और विकल्पको कार्य कहोगे? क्या कहोगे?

मुमुक्षु :- उसका कारण नहीं है इसलिये कार्य नहीं होता है, ऐसा?

पूज्य भाईश्री :- नहीं। कारण-कार्य निश्चयसे बिना नियमके है। फिर ऐसा जोड़नेमें आता है कि जघन्य पुरुषार्थ है वह उसे विकल्पमें आनेका कारण है। चतुर्थ गुणस्थानमें जो पुरुषार्थ हुआ वह जघन्य था। वह जघन्य पुरुषार्थ उसकी कमजोरी है, उसकी अशक्ति है इसलिये पुनः बुद्धिपूर्वकका राग शुरू होता है। फिर भी, उपयोगकी विषय व्याप्ति होने पर भी सम्यग्दर्शनकी व्याप्ति रहती है। सम्यग्दर्शनको और उपयोगको सर्व कालमें समव्याप्ति नहीं है। जब सम्यग्दर्शन प्रगट होता है तब सम्यग्दर्शन-श्रद्धान भी आत्माका और ज्ञान भी आत्माका। लेकिन श्रद्धान रह जाता है और उपयोगकी विषय व्याप्ति होती है। पंचाध्यायीका विषय है।

वह विषय व्याप्ति होती है तब क्या है कि उपयोग परसत्ताको अवलम्बता है, शास्त्रमें जाता है, अशुभ विषयमें जाता है सम्यग्दृष्टिको। परन्तु सम्यग्दर्शन हटता नहीं। और उस वक्त भी जब पुरुषार्थ वृद्धिगत होता है तब वह निर्विकल्पतामें आता है। वह पुरुषार्थ चतुर्थ गुणस्थानमें ही बढ़ता है, तबतक निर्विकल्पता चतुर्थ गुणस्थान पर्यंतकी है। वह अत्यंत तीव्र होकर उस भूमिकासे आगे बढ़ जाता है तब पंचम गुणस्थानमें आरूढ़ होता है। पंचम गुणस्थानमें आरूढ़ होनेके बाद भी बारंबार निर्विकल्पता पंचम गुणस्थानके योग्य भी होती है। बहुत वीतरागता और उदासीनता वहाँ बढ़ती है तब उसे ख्याल आता है कि अब मैं गृहस्थके

लायक परिस्थितिमें रह सकूँ ऐसी मेरी परिणाम नहीं हैं। गृहस्थके योग्य जो विकल्प होते हैं वह विकल्प, अब यह आत्मा चला नहीं सकता। तब उसे दीक्षा अंगीकार करनेका, सर्वसावद्ययोगका त्याग करके, एकान्तपने स्वरूपका साधन करना, ऐसे साधु बननेका भाव आता है। प्रथम विकल्प आता है और योग्य गुरुके पास वह दीक्षा अंगीकार करता है। फिर वह मात्र साधनेका कार्य ही करता है। दूसरा कोई काम नहीं करता। इसलिये उसे साधु कहनेमें आता है। वर्तमानमें जो लौकिक कार्य किये जाते हैं वह साधुका प्रकार नहीं है, विपर्यास है।

मुमुक्षु :- निर्विकल्प ज्ञानमें... हुआ ही नहीं। यदि हुआ हो तो पुनः विकल्पमें आना नहीं बनता।

पूज्य भाईश्री :- पूर्ण निर्विकल्प अर्थात् तेरहवें गुणस्थानमें।

मुमुक्षु :- अपनेको ऐसा लगे कि अमुक समयके बाद अपने विकल्पपरहित हुए,.. परन्तु विकल्प धारावाहीरूपसे अन्दर रहता होगा न?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, सूक्ष्म विकल्प होता है। सूक्ष्म विकल्प होता है। अबुद्धिपूर्वकका राग रहता है। निर्विकल्प दशावालेको भी अबुद्धिपूर्वकका राग रहता है। निर्विकल्प हो... निर्विकल्पतामें भी ऐसा है कि किसीको विकल्प अत्यंत मन्द होते हैं, सूक्ष्म हो जाये तो उसे भ्रान्ति होती है कि मेरा विकल्प अब चला गया ऐसा लगता है। ऐसा नहीं है। निर्विकल्पतामें तो बुद्धिपूर्वकका विकल्प होता ही नहीं। उतना ही नहीं उपयोग है वह अतीन्द्रियताको धारण करता है। उसका एक स्पष्ट लक्षण यह है कि बुद्धिपूर्वक जबतक राग होता है और सूक्ष्म भी विकल्प होता है तब मनाश्रित परिणाम होते हैं। तब इन्द्रियज्ञानका परिणाम होनेसे इन्द्रिय द्वारा वह उपयोग वर्तता है, इन्द्रिय द्वारा वह प्रवर्तता है। और निर्विकल्प उपयोगमें अतीन्द्रिय उपयोग होनेसे असंख्यप्रदेशमें वह वर्तता है। यह अंतर है। असंख्यप्रदेशमें वर्तता है।

वेदांतमें यह विषय इस तरह है कि वचनातीत अनिर्वचनीय दशा होती है। फिर उनको प्रश्न करें कि

अनिर्वचनीय जिसको कहते हो तब आपको कहाँ अनुभव होता है? तो ऐसा कहते हैं कि, यहाँ ब्रह्मरंध्रमें अनुभव होता है। कहते हैं कि, वह प्रकार नहीं है। निर्विकल्पदशाका ऐसा प्रकार नहीं है। निर्विकल्पदशा तो पूरा जो चैतन्यपिण्ड है जितना असंख्यप्रदेशी, उसमें व्याप्यव्यापकभावसे परिणमता है। उपयोग प्रसर जाता है, व्याप्त हो जाता है। और असंख्यप्रदेशमें ज्ञानके दीपक हो गये, आनन्द प्रगट हुआ उसका असंख्यप्रदेशमें वेदन होता है। वहाँ एक मनसे और मस्तकमें ऐसा कुछ नहीं होता। अमुक भागमें वेदन हो, उसका अर्थ यह हुआ कि अभी इन्द्रियज्ञान वर्तता है। वह अतीन्द्रियज्ञान नहीं है। यह विषय जैनदर्शनमें है, कहीं और नहीं है अनुभवका। फिर कल्पना करके गप लगाये उससे कोई मोक्षमार्ग नहीं चलता।

मुमुक्षु :- अतीन्द्रियज्ञान ही सम्यग्दर्शनका लक्षण है, ऐसा हुआ न?

पूज्य भाईश्री :- अतीन्द्रिय उपयोगमें ही प्रथम सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। और सर्व गुणस्थान बदलते हैं वह भी अतीन्द्रिय उपयोगमें ही बदलते हैं, निर्विकल्प उपयोगमें ही बदलते हैं। क्योंकि तब ही पुरुषार्थ तीव्र होता है। एक गुणस्थानसे ऊपरके गुणस्थानमें जाता है तब तीव्र पुरुषार्थ, अत्यंत तीव्र पुरुषार्थ होता है। उसे उस गुणस्थानमें पुरुषार्थ तीव्र होता है तब विकल्प छूटकर निर्विकल्प होता है। परन्तु उतना नहीं, एक नवीन भूमिकाका।

जैसे सम्यक्सन्मुख होता है तब पुरुषार्थ है। परन्तु उस भूमिकाका होना चाहिये कि निर्विकल्पता हो। तब उसे प्रथम छूटकर चतुर्थ गुणस्थान आये। ऐसे उस पुरुषार्थमें निर्विकल्प हो सके, चतुर्थमें ही। परन्तु उतना तीव्र पुरुषार्थ हो कि पंचममें आ जाये। उसकी स्थिरता बढ़ जाती है।

मुमुक्षु :- परन्तु उसका लक्ष्य तो उसके बाद इन्द्रियज्ञानमें जाता है, तो अतीन्द्रियका अनुभव छूट जाता है, तब ही उसका लक्ष्य होता है न कि... वह कैसे है?

पूज्य भाईश्री :- लक्ष्य तो हमेशा रहता है।

लक्ष्य एक ऐसा विषय है कि जो हमेशा रहता है। जबसे स्वरूपका अवभासन हुआ और स्वरूप लक्ष्यमें आया तबसे, सम्यक् सन्मुख हुआ तबसे लक्ष्य बदलता नहीं। 'लक्ष्य थवाने तेहनो कह्या शास्त्र सुखदायी'। शास्त्र स्वाध्याय इसलिये है कि एकबार ऐसा लक्ष्य हो जाये कि फिर वह लक्ष्य बदले नहीं। यदि लक्ष्य न बदले तो उसके ज्ञानकी दिशा न बदले। लक्ष्य है न? उस ओरका ज्ञान है। क्योंकि लक्ष्य ज्ञानकी पर्याय है। ज्ञानकी दिशा बदले नहीं उसे सम्यक् सन्मुखकी दिशा कहते हैं। उसको पुरुषार्थ साथमें काम करता है और बढ़ता है तब उसे सम्यग्दर्शन होता है। कब बहुत बातें आयी थी, पुरुषार्थ बढ़े तब, पुरुषार्थ बढ़े तब होता है। भाई थोड़ा खिँचते थे।

मुमुक्षु :- कल चली?

पूज्य भाईश्री :- गये थे। वह तो दोपहरमें सामान्यतः दर्शन करने जाते हैं (उस वक्त) कभी-कभी चर्चा चलती है।

मुमुक्षु :- क्या बात चली?

पूज्य भाईश्री :- हाँ, वह तो वे ऐसा पूछते थे कि अभी हम क्या करें कि जिससे सम्यग्दर्शन प्राप्त हो? अन्दरमें अभ्यास करके चैतन्य परिणति प्रगट करनी चाहिये। विचार नहीं, मात्र विचार नहीं। विचारसे आगेका एक विषय है इसलिये सिर्फ विचार नहीं ऐसा लिया। अन्दर अभ्यास करना। भेदज्ञानका अभ्यास करना चाहिये। अन्दरमें परिणति हो जानी चाहिये, ये उनका खास शब्द है।

परिणति हो जानी चाहिये माने क्या? कि कभीकबार विचार आये अथवा स्मरणमें आये, कभी भूल गये और मैं तो ज्ञायक हूँ, मैं तो आत्मा हूँ, मैं तो ज्ञानस्वरूपी हूँ, ऐसा नहीं। उसकी परिणति हो जानी चाहिये। उतना जोश होना चाहिये, उतनी लगन होनी चाहिये कि सम्यग्दर्शनके पहले भी उसकी एक परिणति हो जाय। लक्ष्य हो तो उसकी परिणति हो। और तो उसको वह पुरुषार्थ वृद्धिगत होकर, तीव्र होकर सम्यग्दर्शन प्रगट हो। उतना विषय चला था।

अस्तित्व ग्रहण करना चाहिये। वह बात थोड़ी

विशेष चली थी। सब कुछ तो याद नहीं रहता। अस्तित्व ग्रहण करना चाहिये। आत्माका जो ज्ञानमय अस्तित्व है, वह अस्तित्व ग्रहण करना चाहिये। अस्तित्वका ग्रहण करना चाहिये। जैसे रागका ग्रहण होता है, कोई विषयका ग्रहण होता है भावमें, उसके बदले आत्माकी सत्ताका, निज अस्तित्व ग्रहण होना चाहिये। अस्तित्वमें अनन्त गुण भरे हैं। स्वरूप अस्तित्वमें अनन्त गुण भरे हैं। उसका ग्रहण होना चाहिये।

मुमुक्षु :- ज्ञान एक असाधारण लक्षण है।

पूज्य भाईश्री :- ज्ञानलक्षणकी बात कही कि ज्ञानलक्षणसे उसका ग्रहण होता है। ज्ञानलक्षणसे उसकी पहचान होती है। वह भाईने पूछा कि पहचान होकर ऐसा होता है न? तो कहा, हाँ, पहचानकर होता है। ज्ञानलक्षणसे उसका ग्रहण होना चाहिये, ज्ञानलक्षणसे उसकी पहचान होनी चाहिये, उसकी परिणति होनी चाहिये। भेदज्ञानका पुरुषार्थ चलना चाहिये। वह पुरुषार्थ वृद्धिगत हो तो उसे निर्विकल्प दशा और सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो। वह एक क्षणका सम्यग्दर्शन अनन्त भवच्छेदक

है। उतनी शक्ति धारण करता है। उसके बाद उसको अनन्त संसार नहीं है। जिसने एक क्षणकेलिये सम्यग्दर्शन प्रगट कर लिया, उसे अब अनन्त संसार नहीं है। उसमें भी ऐसे निकृष्ट कालमें जिसने प्रगट किया, उसकेलिये तो वह प्रश्न ही नहीं है कि दूसरे भव उसके लम्बे हो। वह सवाल ही नहीं है। क्योंकि वर्तमानमें तो बहुभाग पुरुषार्थ ही उत्पन्न नहीं होता।

वह, 'आविर्भूत कर...' ऐसा कहते हैं। 'ज्ञायकको आविर्भूत कर...' अर्थात् अंतर पुरुषार्थके जोरमें ज्ञानस्वभावमें अतिशयपने भावान्वित होकर, उसे आविर्भूत कहनेमें आता है। अतिशयपने भावान्वित होकर, प्रचुर भावमें आकर। ये भावुक प्रकृति इसलिये यहाँ आदरणीय है। भावुकता है न वह। वह प्रचुर भावमें आनेके लिये एक योग्य परिस्थिति है। 'आत्माका ज्ञायकरूपसे अनुभव करते हैं।' तब वह आत्माको ज्ञायकरूपसे अनुभव करता है। अन्यथा ज्ञायकका विकल्प चले उससे कोई संतुष्ट होनेकी बात नहीं है। ३४४ समाप्त हुआ।

धार्मिक कार्यक्रम

सौम्यमूर्ति पूज्य भाईश्री शशीभाई के वार्षिक समाधिदिन पर तीन दिवसीय धार्मिक कार्यक्रम निम्नोक्त स्थान पर आयोजित किया गया है। चैत्र सुदी ३, सोमवार दि.८-४-२०१९ से चैत्र सुदी ५, बुद्धवार दि.१०-४-२०१९ पर्यंत जिनमंदिर में मंडलविधान रखा गया है। एवं 'शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर' में प्रातः ७.०० से ८.०० पूज्य भाईश्री शशीभाई का सीडी प्रवचन, दोपहर ४.०० से ५.०० गुणानुवाद, रात ८.०० से ९.०० पूज्य भाईश्री शशीभाई का वीडियो प्रवचन एवं भक्ति रखी गई है। दि.१०-४-२०१९, चैत्र सुदी ५ के दिन सुबह ४.०० बजे 'शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर' में भक्ति एवं दो मिनट का मौन रखा जायेगा। तत्पश्चात् ७.०० से ८.०० प्रवचन और बाद में पूज्य भाईश्री के समाधि स्थल पर भक्ति रखी गई है। इस प्रसंग पर आनेवाले मुमुक्षुओं के लिए आवास एवं भोजन व्यवस्था निःशुल्क रखी गई है। आनेवाले मुमुक्षु भाई-बहनों से विनम्र सूचन है की वे अपने आने कि सूचना पहले से दे, ताकि उनके आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था हो सके।

संपर्क :- श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर, फोन : (०२७८) २५१५००५

श्री निहालचंद्र सोगानीजी द्वारा साधर्मियों को लिखे हुए आध्यात्मिक पत्र.....

है। मैं परका कुछ कर ही नहीं सकता, तब पराश्रित परिणाम क्यों करूँ, जो कि स्वयं आकुलतामय ही होते हैं। इन परिणामोंको स्वआश्रित करूँ तो शुद्ध ज्ञान-आनंद व शांतिमय परिणाम होंगे व इनहीका भोगना होगा, जो कि वांछनीय है।

३. स्वमें अर्थात् ज्ञान-आनंद आदि गुणोंके भंडार आत्मामें परिणामोंको पसारते ही साधकपना व मुनिपना आदि क्रमपूर्वक आता है। परिणामोंके इस प्रकारके प्रसरणमें ही यथार्थ ज्ञान, सुखादिका अनुभव उत्पन्न होने लगता है। जिसकी प्रत्यक्षतासे पराश्रित आकुलित परिणाम विषरूप मालूम होने लगते हैं, जो कि सम्यक्दृष्टि साधक व मुनियोंको एक समय मात्रके लिये भी नहीं रुचते।

४. उक्त मान्यता व तद्रूप अनुभव होनेपर अनादिसे चला आया दृष्टिका मोह टूटता है। दृष्टिने जिस स्व अखण्ड स्व आत्माको लक्ष्य किया, उसमें एक साथ परिपूर्ण परिणामका प्रसरण नहीं होता तब तक परिणामका कुछ अंश अखण्डके साथ सुखरूप परिणमता है व उसही परिणामका कुछ अंश उदयके साथ पराश्रित दुःखरूप परिणमता है। साधक व मुनिके इस प्रकारका पराश्रित परिणमता हुआ रागअंश उपदेशादिकका कारण होता है। यह रागअंश चारित्रमोह है, आकुलतामयी है, यह हर समय हेय है, प्रत्यक्ष दुःखरूप है जो कि मुनियोंको बिल्कुल रुचता नहीं व इसमें उन्हें रस आता नहीं। पुरुषार्थकी निर्बलतासे अखण्ड आत्माकी पूरी पकड़ चारित्र परिणाममें नहीं होनेसे ऐसा रागअंश होता है, जिसका निषेध प्रतिसमय उनकी दृष्टि करती रहती है। एक समयके लिये भी चारित्रमोहस्वरूपी रागअंशको वह अपना कर्तव्य नहीं समझते जो कि प्रत्यक्ष दुःखरूप है। अतः बारम्बार स्वमें स्थित होते हुए, रागअंशको तोड़ते हुए, वह शुद्ध सिद्धरूप हो जाते हैं।

५. मुनियोंके रागांशनिमित्तक उपदेशमें उक्त आशयका संकेत होता है। अच्छी होनहारवाले जीवके यह निमित्तरूप पड़ता है और वह स्वयं भी उपदेशादिककी तरफसे लक्ष्य हटाता हुआ, उपदेश आदिको मुनियोंका कर्तव्य नहीं समझता हुआ, उनकी अस्थिरताका दोष समझता हुआ, उनपरसे वृत्ति हटाकर स्वज्ञानकी खानमें प्रवेश करने लगता है। अरिहन्तोंके उपदेशमें निमित्त उनका राग नहीं है वरन् कम्पनकी अस्थिरता है।

६. राग व वीतरागता दोनों कर्तव्य नहीं हो सकते, कारण दोनों भाव परस्पर विरुद्ध हैं। अतः अन्यके चरित्रनिर्माणके कर्तव्यमें वीतरागी कर्तव्यका सहज ही अभाव है; साथ ही अन्यके परिणामका कोई कर्ता हो ही नहीं सकता चाहे मान्यता बनाकर स्वयं दुःखी होता रहे।

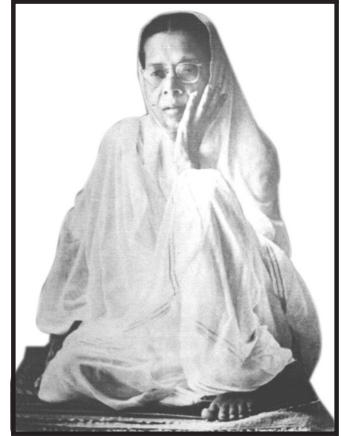
७. एक बार प्रथम सम्यक्त्व तो अधिगमज उपदेशके निमित्तसे ही होता है। दूसरे भवमें उन संस्कारोंके निमित्तसे बिना उपदेश सम्यक्त्व प्राप्त करनेको नैसर्गिक कहते हैं। परंतु स्वयं पराश्रित दृष्टि हटाकर, स्वआश्रित परिणाम करे तो उपदेशको निमित्त कहा जाता है, कर्ता नहीं। जिसकी योग्यता होवे उसको निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धका सहज ही योग होता है, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध अनादिसे चला जाता है व चलता रहेगा।

आशा है मुनियोंके उपदेश सम्बन्धी विषयके उपरोक्त स्पष्टीकरणसे मेरा दृष्टिकोण आपके लक्ष्यमें आयेगा। दृष्टिदोष हटे बाद मुनियोंको उपदेशका राग उनकी अस्थिरताका दोष है, कर्तव्य नहीं व इस दोषको स्थिरताका प्रयत्न करते-करते वह हटाते जाते हैं, कर्तव्य समझकर रखना नहीं चाहते।

आपका प्रोग्राम लिखें व पत्र देवें।

- शुभैषी निहालचन्द्र सोगानी

पूज्य बहिनश्री की वीडियो तत्त्वचर्चा मंगल वाणी-सी.डी. १ B



प्रश्न :- जैनधर्म क्यों सत्य कहा जाता है, दूसरे सब धर्म क्यों जूटे कहे जाते हैं?

समाधान :- उनकी पुत्रियाँ भी ऐसा ही पूछती थीं न। धर्म कहीं बाहर नहीं है, धर्म तो आत्मा का स्वभाव है, आत्मा के स्वभाव में धर्म है। धर्म बाहर नहीं है। सब बाहर मान रहे हैं। बाहर नहीं है, धर्म तो अन्तर में है। दूसरे का जूठा और यह सत्य ऐसे नहीं, लेकिन सत्य क्या है यह निश्चय करना पड़ता है कि सत्य क्या है? धर्म कहाँ रहा है? धर्म सब बाहर में मान रहे हैं कि बाहर में कुछ क्रिया करें तो बाहरसे धर्म होता है। बाहरसे धर्म नहीं होता, धर्म अपने परिणाम में रहा है। तो परिणाम में मात्र अशुभभावसे शुभभाव करे तो पुण्यबन्ध होता है, लेकिन आत्मा का स्वभाव तो उससे भी भिन्न है। आत्मा का स्वभाव पहिचाने तो धर्म होता है। यह शरीर भिन्न, आत्मा भिन्न, दोनों भिन्न-भिन्न वस्तुएँ हैं। आत्मा चैतन्य भिन्न पहिचाने कि जाननेवाला ज्ञायक है। ज्ञायक को पहिचाने, उसमें सब भरा है, उसमें अनन्त गुण हैं, आनन्द आत्मा में है। वह आत्मा को पहिचाने कैसे? पहिचाने और उसकी प्रतीत करे, उसका ज्ञान करे, उसमें लीनता करे तो धर्म होता है। धर्म बाहर नहीं है। विभाव, विकल्पसे जुदा हो, उसका भेदज्ञान करे। शरीर तो भिन्न है लेकिन अन्दर विकल्प-विभाव होते हैं वह भी अपना स्वभाव नहीं है। उससे भी आत्मा तो भिन्न है, उसका स्वभाव भिन्न है।

दूसरे का कैसे असत्य है वह खुद को विचारकर निर्णय करना चाहिये। जैनधर्म यानी वस्तु का धर्म है। वही वास्तव में मुक्ति का मार्ग है। जैन यानी संप्रदाय नहीं है, लेकिन एक वस्तु का स्वभाव है और उसही प्रकारसे धर्म है। जैसा शास्त्र में आता है उसही प्रकारसे वस्तु का स्वभाव और ऐसा ही मुक्ति का मार्ग है। उस मुक्ति के मार्गसे अनन्त जीव मोक्ष गये हैं, इसी मार्गसे। अन्दर अपने स्वभाव को पहिचाने। मैं जाननेवाला हूँ, यह स्वभाव जो है, उस स्वभाव अनुसार स्वयं परिणमन करे तो उसका स्वभाव धर्म प्रगट होता है।

स्फटिक स्वभावसे निर्मल है, वैसे आत्मा भी निर्मल है। अनादिसे वह तत्त्व भिन्न है। कोई पदार्थ किसीको मलिन नहीं कर सकता। स्वयं स्फटिक जैसा निर्मल है। उसमें लाल, पीले आदि प्रतिबिंब उठे, लाल, पीले फूल का (प्रतिबिंब उठे) तो स्फटिक लाल, पीला दिखता है लेकिन होता तो श्वेत ही है। तो स्वयं उसका भेदज्ञान करके उसके स्वभाव को पहिचाने तो धर्म होता है।

पानी स्वभावसे शीतल है, स्वभावसे निर्मल है। कीचड़ के कारण मैला हो तो वह कीचड़रूप हो नहीं जाता। उसमें औषधि डालें तो निर्मल (हो जाता है)। वह तो उसका मूल स्वभाव ही निर्मल और शीतल है। उष्ण हो तो भी पानी का स्वभाव तो शीतल है। अग्नि के निमित्तसे वह उष्ण होता है, लेकिन फिर उसे एक ओर रख दो तो उसका जो स्वभाव था वैसे वह तो शीतल ही हो जाता है।

इसप्रकार आत्मा स्वभावसे शीतल, निर्मल है। लेकिन स्वयं के पुरुषार्थ की मन्दतासे, कर्म कुछ करता नहीं, कर्म का निमित्त है, लेकिन स्वयं मलिनतारूप परिणमता है, उससे भिन्न होकर अपने स्वभाव को

पहिचाने, उसकी श्रद्धा करे, ज्ञान करे, भेदज्ञान करे तो धर्म होता है। पहले तो उसकी जिज्ञासा करे, भावना करे कि कैसे पहिचाने? उसके लिये शास्त्रस्वाध्याय करे, विचार करे, निर्णय करे, परीक्षा करे और फिर लगनी लगाये, आत्मा की महिमा आये तो आत्मा का स्वभाव पहिचानने में आये। उसका भेदज्ञान हो, उसकी स्वानुभूति हो तो सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन होता है इसलिये मुक्ति का मार्ग प्रारम्भ होता है। स्वानुभूति हो, आत्मा के आनन्द की अनुभूति हो, जगतसे भिन्न ऐसा अनुपम आत्मा है वह पहिचानने में आये। स्वानुभूति होने के बाद उसे चारित्र-लीनता होती है और उसमें आगे बढ़ते-बढ़ते फिर मुनिपना आता है और केवलज्ञान होता है। वह मुक्ति का मार्ग सम्यग्दर्शनसे शुरू होता है।

सम्यग्दर्शन अनन्त काल में प्रगट हुआ नहीं, बाहर में रुक गया है। अन्तर में उसकी जिज्ञासा, लगनी लगाये कि आत्मा की स्वानुभूति सम्यग्दर्शन कैसे हो? उसके लिये विचार, वांचन (करे)। गुरुदेवने जो कहा है उसका विचार करे, वांचन करे, लगनी लगाये तो होता है। भेदज्ञान करने का प्रयास करे। द्रव्यदृष्टिसे आत्मा निर्मल है, पर्याय में अशुद्धता है वह कैसे नाश हो, उसका पुरुषार्थ करे तो होता है।

दूसरे धर्म का तो विचारसे निर्णय करना पड़ता है। वीतरागी धर्म है वही सत्य धर्म है। आत्मा का स्वभाव पहिचाने और अन्दरसे भेदज्ञान हो, वीतरागदशा प्रगट हो वही सत्य धर्म है। जिसमें राग की बात आये, जिसमें कुछ और बात आये ऐसा धर्म नहीं होता। वीतरागी देव वही सच्चे देव हैं और जो वीतरागी धर्म है वही सत्य धर्म है। आत्मा का स्वभाव ही धर्म है। दूसरे में इधर-उधर की राग की, इतना करनेसे धर्म होगा, दूसरा कोई धर्म दे देगा, बाहरसे धर्म आता है, कोई कर देता है (ऐसा नहीं है)। कोई किसीका कुछ नहीं करता। प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र है। स्वयं स्वतंत्र है। जन्म-मरण में स्वयं स्वतंत्र है, राग करने में स्वयं राग करे। छोड़ने में स्वयं छोड़ता है। कोई किसीका कुछ नहीं कर देता। प्रत्येक आत्मा कोई कर देता है, कोई भगवान कर देता है, वह बात यथार्थ नहीं है। आत्मा पराधीन हो जाये, कोई कर देता हो तो। कोई किसीको मोक्ष में ले जाये और कोई संसार में परिभ्रमण कराये, ऐसा हो। स्वयं स्वतंत्र है। स्वयं राग-द्वेष के कारण, विपरीत मान्यता के कारण जन्म-मरण करता है और स्वयं ही सच्चा ज्ञान करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करके स्वयं ही मुक्ति को प्राप्त होता है, मुक्तस्वरूपसे परिणमित होता है।

प्रश्न :- आत्मा का स्वरूप क्या?

समाधान :- आत्मा का स्वरूप-आत्मा जाननेवाला है। उसका मुख्य स्वभाव ज्ञान है। यह शरीर कुछ जानता नहीं, ज्ञान जानता है। अंतर में ज्ञानस्वभावी जानता है। लेकिन इस ज्ञान में अनन्त गुण है। आत्मा में ज्ञान है, आनन्द है, ऐसे अनन्त गुण आत्मा में हैं। जिनके कोई नाम नहीं आते। ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि नाम आते हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र, बल, प्रभुत्व, विभुत्व ऐसे कोई-कोई नाम आते हैं। ऐसे तो आत्मा में अनन्त गुण हैं। वह आत्मा का स्वभाव है। लेकिन उसे पहिचानने में, जाननेवाला स्वभाव है, जो जाननेवाला है वह आत्मा है, जो जानता है। ये शरीर नहीं जानता। भीतर में जो विकल्प राग-द्वेष होते हैं तो राग कुछ जानता नहीं। उसे जाननेवाला कोई तत्त्व है भीतर में। वह तत्त्व आत्मा है। जिसको जानता है, सुख हुआ, दुःख हुआ, राग हुआ सबको कौन जानता है? जाननेवाला आत्मा है वह जाननेवाला है। जाननेवाला कोई ऐसा उसका स्वभाव है कि अनुपम है-जिसकी उपमा नहीं होती। ऐसा यह जाननेवाला अनन्त को जानता है। ऐसा उसका स्वभाव है। लेकिन राग-द्वेष में एकत्व हो गया है इसलिये उसका जानना कम हो गया, बहुत अल्प हो गया है। लेकिन वह अनन्त को जाने (उसमें) आँख, कान आदि किसीकी ज़रूरत नहीं पड़ती। ऐसा उसका ज्ञान का स्वभाव कोई अद्भूत है। लेकिन वीतरागदशा

होवे तब वह प्रगट होता है।

भीतर में जो जानता है वह जाननेवाला तत्त्व है वह आत्मा है। उसका नाश नहीं होता। कोई इसका नाश नहीं कर सकता। ऐसा तत्त्व भीतर में है। शरीर कुछ जानता नहीं, हाथ कुछ जानता नहीं, विकल्प राग-द्वेष कुछ नहीं जानते, जाननेवाला अन्दर में है। जाननेवाले को यदि जान ले कि वह आत्मा है। निद्रा में सब जाननेवाला है। क्या हुआ? बचपनसे बड़ा हुआ, उसमें क्या-क्या हुआ उसका ज्ञान करता है वह जाननेवाला आत्मा है। वह जाननेवाला है, उसका स्वभाव है जानने का। भीतर तो उसका आनन्द स्वभाव है, उस आनन्द की कोई उपमा नहीं होती ऐसा आनन्द स्वभाव है। उसका चारित्र स्वभाव है। आत्मा में लीनता करे ऐसा स्वभाव है। बहुत अनन्त-अनन्त स्वभाव है उसका। अनन्त बलवान है, ऐसा स्वभाव है। बाहर में बल करे (वह नहीं), अन्तर आत्मा में बलवान है। वह आत्मा का स्वभाव है।

पर जो जानता है वह जाननेवाला नहीं, स्वयं जाननेवाला है। जो जड़ है, रूप, रस, गन्ध, ऐसा उसका स्वयं स्वभाव है। चैतन्य आत्मा का स्वभाव स्वयं जानने का स्वभाव है। कोई उसका कर्ता नहीं है। स्वयं उसका तत्त्व स्वतःसिद्ध किसीके बनाये बिना सहज ऐसा तत्त्व जाने, जैसे जड़ सहज है, ऐसे आत्मा जाननेवाला सहज तत्त्व है। उसकी जिज्ञासा हो तब वह जानने में आता है। विचार करे तब जानने में आता है। कोई कहता है, आत्मा है ही नहीं। ऐसा नहीं है। आत्मा एक वस्तु है। उसकी स्वानुभूति करनेसे, भीतर में उसको पीछाननेसे उसकी स्वानुभूति होती है। जाननेवाले आत्मा की (स्वानुभूति होती है)। जाननेवाला आत्मा है।

(श्रीमद् राजचंद्र पत्र... पृष्ठ संख्या-१९ से आगे)

यह सब आत्माको छूड़ानेके लिये हैं; बन्धनके लिये नहीं हैं। जिनसे बन्धन हो वे सब (क्रियासे लेकर समस्त योगादि तक) त्याज्य हैं।

- मिथ्यानामधारीके यथायोग्य।

स्वानुभूतिप्रकाश पत्रिका सम्बन्धित

सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्टकी ओरसे प्रकाशित हो रही स्वानुभूतिप्रकाश मासिक पत्रिकाके एड्रेस सम्बन्धित किसी भी प्रकारका फेरफार, नाम डलवाना, कटवाना इत्यादिके लिये निम्नलिखित नंबर पर अपना ग्राहक क्रमांक लिखकर वोट्स एप करनेकी विनती। प्रशांतभाई जैन, मो. ९३७७१०४८६८

नवीन प्रकाशन (अध्यात्म सुधा भाग-१२) (गुजराती)

पूज्य भाईश्री शशीभाईके ८६वें जन्म जयंति महोत्सव प्रसंग पर पूज्य बहिनश्रीके वचनामृत ग्रन्थ पर प्रकाशित हो रहे शब्दशः प्रवचनोंकी श्रृंखला अंतर्गत अध्यात्म सुधा, भाग-१२की अर्पण विधि दि. १३-१२-२०१८ कि दिन तक अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक की गयी। जिन मुमुक्षु भाई-बहनोंको स्वाध्यायार्थ पुस्तक मंगवानी हो, वे ट्रस्टके कार्यालयमें संपर्क करके मंगवा सकते हैं।

संपर्क :- वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट, ५८०, जूनी माणेक वाड़ी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर.

१८१

बंबई, मगसिर सुदी २, शनि, १९४७

सुज़ भाई छोटालाल,

भाई त्रिभोवनका और आपका पत्र मिला। और भाई अंबालालका पत्र मिला।

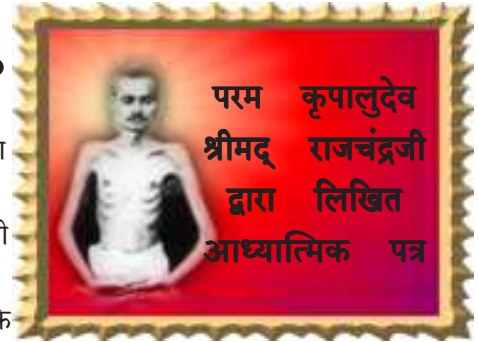
अभी तो आपका लिखा हुआ पढ़नेकी इच्छा रखता हूँ। किसी प्रसंगसे प्रवृत्ति (आत्माकी) होगी तो मैं भी लिखता रहूँगा।

आप जिस समय समतामें हों उस समय अपनी अंतरकी ऊर्मियोंके विषयमें लिखियेगा।

यहाँ तीनों काल समान हैं। प्राप्त व्यवहारके प्रति असमता नहीं है, और उसका त्याग करनेकी इच्छा करी है; परन्तु पूर्व प्रकृतिको दूर किये बिना छुटकारा नहीं है।

कालकी दुःषमता... से यह प्रवृत्तिमार्ग बहुतसे जीवोंको सत्के दर्शन करनेसे रोकता है।

आप सबसे अनुरोध है कि इस आत्माके संबंधमें दूसरोंसे कोई बातचीत न करें।



वि.रायचन्द



१८२

बंबई, मगसिर सुदी १३, बुध, १९४७

आपका कृपापत्र कल मिला। पढ़कर परम संतोष प्राप्त हुआ।

आप हृदयके जो जो उद्गार लिखते हैं, उन सबको पढ़कर आपकी योग्यताके लिये प्रसन्न होता हूँ, परम प्रसन्नता होती है, और वारंवार सत्युगका स्मरण होता है। आप भी जानते हैं कि इस कालमें मनुष्योंके मन मायिक संपत्तिकी इच्छावाले हो गये हैं। कोई विरल मनुष्य निर्वाण-मार्गकी दृढ़ इच्छावाला रहना सम्भव है; अथवा वह इच्छा किसी एकको ही सत्पुरुषके चरणसेवनसे प्राप्त होती है ऐसा है।

महांधकारवाले इस कालमें हमारा जन्म किसी कारणसे ही हुआ होगा, यह निःशंक है; परन्तु क्या करे? वह संपूर्णतासे तो वह सुझाये तब हो सकता है।

- वि. रायचंद

१८३

बंबई, मागसिर सुदी १४, १९४७

आनन्दमूर्ति सत्स्वरूपको अभेदभावसे त्रिकाल नमस्कार करता हूँ।

परमजिज्ञासासे भरपूर आपका धर्मपत्र परसों मिला। पढ़कर संतोष हुआ।

उसमें जो जो इच्छायें बतायी हैं, वे सब कल्याणकारक ही हैं; परन्तु उन इच्छाओंकी सब प्रकारकी स्फुरणा तो सच्चे पुरुषके चरणकमलकी सेवामें निहित है। और अनेक प्रकारसे सत्संगमें निहित है। यह सब अनन्त ज्ञानियोंका सम्मत किया हुआ निःशंक वाक्य आपको लिखा है।

परिभ्रमण करते हुए जीवने अनादिकालसे अब तक अपूर्वको नहीं पाया है। जो पाया है वह सब पूर्वानुपूर्व है। इन सबकी वासनाका त्याग करनेका अभ्यास कीजियेगा। दृढ़ प्रेमसे और परमोल्लाससे यह अभ्यास विजयी होगा, और वह कालक्रमसे महापुरुषके योगसे अपूर्वकी प्राप्ति करायेगा।

सर्व प्रकारकी क्रियाका, योगका, जपका, तपका और इसके सिवाय अन्य प्रकारका लक्ष्य ऐसा रखिये कि

(अनुसंधान पृष्ठ सं.१८ पर...)